विज्ञापन

—०००—

भाषा की नवीन शिक्षा और मन बहलाव की पुस्तकें

सब का मूल्य डाकव्यय सहित है

जिन की इच्छा हो श्रीयुत् बाबू काशीनाथ को सिरसा जिला इलाहाबाद के पते से मूल्य भेज कर मंगवा लेवें।

१—नीत्युपदेश अर्थात् अपनी युक्ति से बुद्धि बढ़ाने नीति धर्म पालन करने, और आरोग्य रहने के नियम और विध, इस में सुन्दर रीति से लिखने, सभा में बोलने, स्मरण, तर्कणा शक्ति बढ़ाने, खान, पान, रहने, आरोग्यता की रक्षा, गुरुजनों की आज्ञापालन सत्य बोलता, आलस्यत्याग, उदारता, उद्योग, साहस, दृढ़ता आदि के विषय उत्तम २ उपदेश हैं। मू०॥ यह सेल्फ—कलचर (अपनी उन्नति आप करना) का अनुवाद है यह पंजाब यूनीवर्सिटी और अवध के नारमल स्कूलों की शिक्षा में दाखिल है।

२—भारत की व्यतीत वर्तमान और भविष्य दशा, इस व्याख्यान में आर्य्य पूर्वजों के दिव्य गुण दिखाकर उन का अनुकरण करने का उपदेश है, मू० ≤)

३—योरोपियन धर्मशीला और पतिव्रता स्त्रियों के परम मनभावन ४७ चरित्रों का संग्रह। मू० ॥≤)॥

४—खेती की विद्या के मुख्य सिद्धान्त—इस में योरप की नई विद्यानुसार धरती की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने, नाना प्रकार के खाद तैयार करने और कौनसा खाद कौन प्रकार की धरती और जिन्स में अधिक लाभ दायक है, और कब डालना चाहिये खेत जोतने, जिन्स बदल कर बोने, पशु पुष्ट करने आदि की, सरल विधें लिखी हैं, मूल्य ॥≤)॥ महाराजा नाहन ने पाठशालाओं के लिये इसकी २००० प्रति ली हैं।

ओ ३ म्

व्याख्यान ।

:-०-:

ओ३म् बिश्वानिदेव सवितुर्दुरितान परासुव
यद्भद्रं तन्न आसुव ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हे सज्जनों। बड़े आनंद का विषय है कि आज हम सब, समाज के पवित्र स्थान में अपने कर्त्तव्य धर्म के विषय वादानुवाद करने के लिए जिस से सत्य का निर्णय हो एकत्र हुए हैं। जो सत्सङ्ग के बड़े २ लाभ हैं वह प्रत्यक्ष हैं। यही सद्धर्मों के स्थापन करने का मूल कारण है, मन की वृत्तियों को सुधारने, कर्त्तव्य धर्म में श्रद्धा उत्पन्न करने और सत्य के खोज करने के लिए इससे उत्तम कोई दूसरा उपाय नहीं है। पूर्ण ज्ञान प्राप्ति करने का मुख्य यही द्वारा है सब वेद शास्त्र महात्माओं का यही उपदेश है की सत्संग करो, योगीश्वर श्रीकृष्णजी ने गीता में अर्जुन के प्रति कहा है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

भाई! ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मैं तुम्हें आज ही मन बतादूं। महात्माओं के पास जाओ, वे सदैव तत्व के विचार में रहते हैं। उनको दंडवत् करो, प्रश्न करो, सेवा करो, तब वह तुम्हें उपदेश करेंगे, यह प्रत्यक्ष है कि जैसी संगति होती है वैसी बुद्धि होती है। आज आप यहां समाज में विराजमान हैं तो आप के हृदय की यही वृत्ति हो रही है कि अपने कर्त्तव्य धर्मों का

विचार करें। यह मनुष्य देही व्यर्थ जाती है अपनी जीवन वृत्ति सुधारें। नहीं तो अन्त समय होने पर ईश्वर को क्या मुख दिखावेंगे। कल ही संयोग बस किसी मित्र के यहां निमंत्रित हो कर आप वेश्या के नाच में जावें तो विचारिये, उस समय आप की चित्तवृत्ति किस ओर हो जायगी। क्या मन में ऐसी तरंगें न उठने लगेंगी, "यार जो कुछ दुनियां में है। ऐश आराम में हैं क्यों अपनी जान को धर्म कर्म के विचारों के बखेड़ों में डाले, सब ज्ञान ध्यान का विचार भूल जायगा। उसी अवसरानुसार सब विचार रह जांयगे, बस प्रिय मित्रों जो कुछ हमारे आत्मा की भलाई है केवल सत्संग में है। तीर्थस्थानों के स्थापित होने का एक मूल कारण यही अनुमान होता है कि प्राचीन समय में हमारे ज्ञानवान् आर्य पुरुष समय २ पर तत्व के विचार के लिए नियत स्थानों पर एकत्र होते थे, महाभारत आदि ग्रंथों में ऐसे बीसियों इतिहास हैं। हा! हा! हा। उन्हीं आर्यों के हम पतित संतान हैं। यदि उन में से आज कोई स्वर्ग से उतर आवे, और हमारे भ्रष्टाचरण देखे तो हमें अपनी संतान कहने से परम लज्जित हो।

हे सुजनों। मेरा विचार है कि आज आप से इस विषय में निवेदन करूं कि "मनुष्य के लिए सच्चा सुख किसमें है और वह क्यों कर प्राप्त हो सकता है" आशा है कि आप मेरी विनती पर ध्यान देंगें,।

मित्रो! हम नित्य अपने व्यवहारों में सुख दुःख का नाम सुनते हैं। यह नाम ऐसे हैं कि जिन से कोई अजान नहीं है। सब इस से यही अर्थ समझते हैं कि प्रिय वस्तु की प्राप्ति से सुख और अप्रिय से दुःख होता है। परंतु संसार में यह बड़ा ही आश्चर्य दीख पड़ता है कि एक ही वस्तु से एक जन को दुःख और दूसरे को सुख होता है, और न कहीं कोई निश्चित जान पड़ता है कि

किस वस्तु से सब को दुःख और किस से सब को सुख होता है। बड़े २ अमीरों को देखिये कि मखमल की गुदगुदी सेज पर भी शीघ्र नींद नहीं आती, खस की टट्टियां लगी हैं, फर्राशी पंखे चल रहे हैं कमरा सुगंध से महक रहा है फिरभी कहते हैं कि तबियत को चैन नहीं दूसरी ओर दृष्टि डालिए तो एक किसान प्रातःकाल से दो पहर तक धूप में हल जोतता रहा, अब कंकड़ पर बड़े चैन की नींद से सो रहा है, हम आप में से बहुतेरों के ये स्वभाव पड़े हुए हैं कि अभी बढ़िया तनजेब व मलमल पहिरने को न मिले तो चित्त महाखेदित होने लगी, दिहात में हजारों ऐसे मनुष्य हैं कि जिन को साल में मोटे गाढ़े की एक धोती में ही आनन्द रहता है और वह भी ऐसी कि जब तक उस में दम रहता है धोबी का मुंह नहीं देखती, आप ने बहुतेरे अमीर ऐसे देखे हों गे, की उनके सामने, नित्य नाना प्रकार के व्यंजन और परम स्वादिष्ठ वस्तु, अचार, चटनियां, मुरब्बे, बढ़ियां मिठाइयाँ परोसी जाती हैं—और फिर भी यह कहते हुए नाक भौं सकोड़ते देखा होगा कि, "भोजन स्वादिष्ठ नहीं" फिर दूसरी ओर दृष्टि डालिए तो ऐसे भी जन हैं जो तीन पहर की मेहनत करने पर सूखे चने, वा रोटी खाने पर परम आनन्दित हो जाते हैं। हम आप आज यहां सादर निमंत्रित हो कर आए हैं यदि इस स्थान के स्वामी हमारे आने पर सन्मान सहित न कहते आइए मित्रवर! बड़ी कृपा की, विराजिए तो हम अपने चित्त में कैसा अपमान समझते, और दुःखी होते। वही मनुष्य भिक्षुक है जो एक मुट्ठी अन्न के लिए हमारे द्वार पर घंटों रिरियाता है और हम बीसियों दुर्वचन कहते हैं और उस के चित्त पर तनिक भी अपमान के दुःख की झलक नहीं देख पड़ती बहुतेरे जन ऐसे हैं कि तनिक शारीरक पीड़ा, होने वा किसी प्यारे के विछोह होने पर दुःख से ऐसे व्याकुल हो जाते हैं और तड़फने लगते हैं

मानों अब इसी दुःख में शरीर छोड़ दें गे, कोई २ ऐसे प्राणवान् हैं कि उस दुःख को शूरवीरों के समान, यह कह कर सह लेते हैं कि यह शरीर का धर्म है वा प्रभु की योंही इच्छा थी उनके हृदय पर तनिक क्षोभ नहीं होता। सांसारिक व्यवहारों में नित्य सब को ऐसे अवसर पड़ जाते हैं। कभी आप किसी मित्र को रोग की दशा में देख ने गए हों तो देखा होगा, कि तनिक ज्वर के वेग से ऐसा व्याकुल हो रहा है की धोती खोल कर फेंक दी है, हाय २ मचा रहा है; दुर्वचन उन को ही कह रहा है जो रात दिन उस की सेवा करने में तत्पर है, जो मित्र कष्ट करके उसे देखने आए हैं उन से सन्मान का वचन तक नहीं कहता और न यह परवाह करता है कि वे क्यों आए हैं! इस के विरुद्ध कहीं कभी आप ने कोई ऐसा ज्ञानी देखा होगा कि शरीरान्त समय आप-हुंचा है प्राणत्याग की पीड़ा हो रही है और वह धैर्यसहित सब से सन्मान के वचन बोलता है। किसी कवि ने सच कहा है "देह धरे को दंड है सब काहू को होय, ज्ञानी काटे ज्ञान से मूरख काटे रोय" इन दृष्टान्तों से सिद्ध है कि मनुष्य को सुख दुःख किसी वस्तु से नहीं होता एक ही से एक जन को दुःख होता है दूसरे को नहीं होता, फिर विचार कीजिए कि वह क्या वस्तु है जो मनुष्य के दुःख का मूल कारण है॥

नायं जनोऽस्मि सुखदुःखहेतुर्न ग्रहाश्चात्मा ग्रहकर्मकालाः
मनः परं कारणमस्ति येन संसारचक्रं सुखदुःखमेति॥

भाई हमारे सुख दुःख का हेतु न कोई मनुष्य न कोई ग्रह न कोई काल न कोई कर्म न कोई भूत प्रेत न कोई देवता है क्या कारण है! कि एक अमीर को नरम गुदगुदी सेज पर भी चैन नहीं पड़ता और एक फकीर वा किसान कंकड़ों पर चैन से सोता है। एक जन एक दुःख में व्याकुल हो जाता है उसी दुःख में

दूसरा पड़ा हुआ सावधान रहता है धैर्य हाथ से जाने नहीं देता। एक नाना प्रकार के स्वादिष्ठ व्यंजनों पर भी नाक भौं सकोड़ते हैं दूसरे सूखे चने वा जौ की रोटी में ही मगन रहते हैं इस सब का मुख्य हेतु एक मन की वृत्ति है, जिन्हो ने ज्ञान द्वारा मन की वृत्तियों को सुधार लिया हैं संसार के तुच्छ उलट फेरों के कारण उनके मन में चोभ उत्पन्न नहीं होता। दृढ़ता सहित वे जानते हैं कि हमारे रोये से गई वस्तु फिर नहीं आ सकती पीड़ा आदि दुःख इस हाड़ मास के शरीर का धर्म है, बिन हुए न रहेगा यह सहना ही पड़ेगा, चाहे व्याकुल हो कर और रुदन करके सहो, चाहे धैर्य और शान्तभाव हो कर सहो इस कारण तत्व दर्शी महात्मा अभ्यास से मन की वृत्तियां ऐसी कर लेते हैं कि प्रिय वस्तु के मिलने से न बहुत फूल ही जाते न अप्रिय के मिलने से दुःखसागर में डूब ही जाते हैं सौम्य और शान्त भाव होना इसी को कहते हैं।

हे आर्यबान्धवों! जब हमारे पुरखों में ये गुण थे, और वह चित्त की ऐसी वृत्तियां जितेन्द्रिय हो कर किए हुए थे, तब ऐसे धैर्यवान्, शूरवीर शान्तस्वभाव व्यवसायी, और अपने धर्म पर आरूढ़ थे, यद्यपि हमें इस प्रकार मन की वृत्तियां करना महा कठिन जान पड़ता है यथापि शनैः शनैः अभ्यास होने से यह सहज है। यदि हम दृढ़ता पूर्वक अभ्यास करने की प्रतिज्ञा करें तो अवश्य कुछ कर ही लेंगे, जब तक हमारे मन इस प्रकार न सुधर जांयगे, तब तक हमें शान्ति जो परम सुख का मूल है कदापि प्राप्त न होगी,

अब मैं कुछ ऐसी वृत्तियों का आप से निरूपण करता हूं जिनको हम आप सब सहज में अभ्यास से प्राप्ति करके परमसुख लाभ कर सकते हैं, और जिनके द्वारा इस संसार में ही अक्षय सुख प्राप्त हो सकता है। आप को नित्यव्यवहार के अनुभव से

भली भांति विदित है कि जो सुख इन्द्रियद्वारा प्राप्त हो सकता है वह क्षणमात्र का है, मनुष्य के आन्तरिक आत्मा को कभी उन से सन्तोष नहीं होता, भोजन, बसन, मैथुन, आदि सब इन्द्रियों के विषय ऐसे हैं कि जब प्रमाण से अधिक होंगे उन में भोगी को किंचित स्वाद नहीं रहेगा मन ऊभ जाता है।

संसार में मनुष्य को सच्चा सुख पांच वस्तुओं
से प्राप्त हो सकता है॥

१—अपना नियमित धर्म यथावत् पूर्ण करने में अर्थात् सब काम सात्विकी बुद्ध्यानुसार करने में।

(Satisfaction of conscience and doing ours own duties faithfully)

२—परोपकार व्रत रखने में।

३—सन्तोषव्रत रखने में।

४—विद्याध्ययन करने में।

५—ईश्वराराधन में।

मनुष्य के क्या २ धर्म हैं इसकी बड़ी व्याख्या हो सकती है परन्तु मुख्य यही है कि जो हमें पुत्र, भाई, बहन, सम्बन्धी, पति, पिता, स्वामी, सेवक, पड़ोसी, भारतवासी और मनुष्य जाति होने पर कर्तव्य है, फिर परमार्थिक धर्मों में अपने आत्मा की उन्नति कर्तव्य है। ये सब तब ही पूर्ण रीति से ठीक होते हैं जब हम सब काम अपनी सात्विकी बुद्धि के अनुसार (जिस को अङ्गरेजी में कोन्शन्स, कहते हैं) करें बुद्धि का निरूपण इस प्रकार सच्छास्त्रों में किया गया है—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी॥१॥
यया धर्ममधर्म्मं च कार्याकार्ये भयाभये।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥२॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३ ॥

१—जो बुद्धि धर्म में प्रवृत्त और अधर्म से निवृत्त और योग्य कार्य में अभय और निन्दित कर्म में भय करे और बन्ध मोक्ष का कारण जानने वाली हो, सो सात्विकी अर्थात् सब से श्रेष्ठ निर्मल बुद्धि है।

२—पुरुष जिस बुद्धि से धर्म अधर्म कर्त्तव्य, और अकर्त्तव्य को सन्देह से देखता है वह राजसी मलीन बुद्धि है।

३—जिस बुद्धि से धर्म को अधर्म और संपूर्ण पदार्थों को अन्यथा, भाव से देखता है वह अज्ञानाच्छादित होने से तामसी अर्थात् महामलीन निकृष्ट बुद्धि है। हे प्यारे आर्य बांधवो जब हम अपने सर्व लौकिक और पारलौकिक कार्य, सात्विकी बुद्धि के अनुसार करते हैं तो उन के करने में चाहे शरीर भी छूट जाय, तो भी हमारे आत्मा को परमानन्द होता है। और हम मन ही मन में, परम प्रफुल्लित होकर मगन होते हैं। इस विषय में बीसियों ऐसे सत्पुरुषों के दृष्टान्त जगत् के इतिहासों में विद्यमान हैं। उन में से दो एक आप से वर्णन करूंगा, इसका एक दिव्य दृष्टान्त वैदिकधर्म के जीर्णोद्धारक श्रीयुत स्वामीदयानन्दसरस्वती जी हैं। यह स्वाभाविक सिद्ध है कि संसार में जब कोई महात्मा लोगों के धर्म और आचरणव्यवहार के सुधारने के लिए कटिबद्ध होता है तो बहुधा दुष्ट जन जिन को, उन सुधार के कामों के प्रचलित होने से हानि पहुंचती है। उससे द्वेष रखते हैं वरन प्राण के भी घातक हो जाते हैं। शङ्कराचार्य (जिन्हों ने वेदधर्म स्थापन करने और नास्तिकों के मतखंडन करने में ऐसे महाप्रयत्न किये हैं जिन के फल आज तक विद्यमान हैं) विष से केवल ३२ वर्ष की अवस्था में मारे गए। श्रीस्वामी जी के स्वर्गवास पर भी ऐसे बहुत संदेह किये गए हैं। वह जो सुजन अन्त समय

पर श्री महाराज की सेवा में विद्यमान थे, कहते हैं कि आप ने अत्यन्त हर्षित होते हुए वेदमंत्र उच्चारण करते हुए, शरीर परित्याग किया, अन्त समय में परम आनन्दित होने का मुख्य हेतु यही था, कि उन की पवित्र आत्मा को यह स्मरण करके परम प्रसन्नता थी, कि हमने अपना कर्त्तव्य धर्म पूर्ण किया, और यथार्थ में हम से लोकहित बन पड़ा, ऐसे समय मनुष्य को अपने शुभाशुभ कर्मों का पूरा स्मरण होता है और उन का परिणाम विचार कर आनन्द या खेद की झलक मुख पर आजाती है।

२—यूनान देश में प्राचीन काल में एक महात्मा सुकरात नामक हुआ है। वह बड़ा विचारशील और विद्वान् था, अपने देशियों के भ्रष्टाचरण और बुरे मत और सैकड़ों प्रकार के कल्पित देवी, देवता, भूत, प्रेत, पूजते देख कर उस के मन में अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई। उस ने अपने शिष्यों को उपदेश किया कि सृष्टि का कर्त्ता एक परब्रह्म परमात्मा है। उसी की केवल उपासना करना मनुष्य को योग्य है। यह देख कर दुष्टों ने जिनको उन पाखंड मतों से भेंट पूजा करके लाभ होता था। उस को इस अपराध का दोषी ठहराया कि वह बालकों को मिथ्या उपदेश करके भ्रष्ट करता है और बिगाड़ता है। राज सभा के सामने वह लाया गया, सब एक से ही मिल गए उस को यह दंड हुआ कि वह विष पिला कर मारा जाय, वहां कोई ऐसा न था, जो उसके दिव्य गुणों को समझता, अन्त को विष का प्याला लाया गया, सुकरात ने ईश्वर से प्रार्थना करते हुए शान्तभाव से पानकर लिया। उस के प्रिय शिष्य उस के पास अन्त समय में उपस्थित थे, एक ने पूछा कि आप का चित्त इस समय कैसा है। उस ने तुरन्त प्रसन्न वदन हो कर बड़ी आनन्दमय वाणी से कहा "प्रिय मित्र! मेरा चित्त अत्यन्त प्रफुल्लित है, मैं बड़े आनन्द से शरीर छोड़ता हूं। मेरी आत्मा परमहर्षित इस कारण है कि मैं चित्त

से जानता हूं कि जो कुछ मैं ने किया है, अपनी समझ अपनी बुद्धि के अनुसार ठीक और सत्य किया है, मुझे इसकी परवा नहीं चाहे कोई मेरी स्तुति करे चाहे निन्दा करे, शरीर रहे चाहे जाय;, ।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्तु वन्तु ।
लक्ष्मीः समविशुत गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरण मस्तुष्ठु गान्तरे वा ।
न्यायत्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥

अर्थ—नीति चाहने वाले चाहे निन्दा करें चाहे स्तुति और लक्ष्मी चाहे घर में बहुत सी आवे वा भले ही चली जाय प्राण चाहे अभी चले जांय चाहे कल्पान्त में परन्तु धीर लोग न्याय का मार्ग छोड़ कर एक पग भी उस से बाहर नहीं हटने-

ह । ह । ह । अपना यथोचित धर्म पूरा करने और सात्विकी बुद्ध्यनुसार चलने से वैसा परम आनन्द होता है । कि जिस के सामने सत् पुरुष और तो क्या अपना शरीर तक निछावर कर देते हैं । ह । ह । ह । सत्य है परम सत्य है

यमो वैदस्वती-देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून् गमः ॥

अर्थ—वैवस्वत देव जो सब के हृदय में स्थित है । जिस का उन से विवाद नहीं होता अर्थात् जो समझ के अनुसार ठीक काम करता है उस के परम पवित्र होने में, किञ्चित संदेह नहीं ।

(३) सन् १८५७ ई० के उपद्रव के समय सरहेनरीलोरेन्स अवध के चीफ़ कमिश्नर थे वह अत्यन्त वीर न्यायशील और धर्मिष्ठ सुजन देश के निपुण प्रबन्धकर्त्ता, और भारत वासियों के बड़े हितेच्छु थे । वेलीगारद लखनौ में जब उन्हें और दूसरे अङ्गरेजों को बागी घेरे हुए थे और जहां थोड़े जन सहस्रों बागियों के

सामने अत्यन्त वीरता से लड़ते रहे। सर हेनरी के एक गोला लगा जिससे सब को विदित हो गया कि क्षण में उनका जीवन समाप्त हो जायगा। अन्त समय में एक मित्र ने पूछा जो कुछ आप की इच्छा हो मुझ पर प्रगट कर दीजिये, और जो कुछ हमारे लिये उपदेश हो कीजिये। हेनरी ने कहा मैं परम प्रसन्नता से शरीर छोड़ता हूं। मैं ने सत्‌चित्त से अपना कर्तव्य धर्म पूर्ण किया मेरी समाधि पर केवल यही लिख देना।

Here lies Henry Lowrance, he has done his duty.

"यहां हेनरी लोरन्स की मिट्टी पड़ी है उस ने अपना कर्तव्य धर्म पूरा किया" इस में मेरी सच्ची प्रसन्नता है अहा। धन्य हैं वे महात्मा जिन को अन्त समय तक अपने कर्तव्य धर्म का विचार रहता है। उनकी आत्मा को कैसा संतोष और शान्ति रहती है। यह आनन्द अवर्णनीय है इस का अनुभव उन्हीं सज्जनों को होता है जो धर्मिष्ठ हैं।

(४) चौथा दृष्टान्त यह है, एक इतिहास में लिखा है कि एक चक्रवर्त्ती राजा का पुत्र अत्यन्त दुराचारी था, नित्य एक न एक नये उपद्रव करता रहता और सब रीति करके प्रजा पर अत्याचार करता और पीड़ा देता। राजा ने उस के सुधार ने के लिये बहुत प्रयत्न किए, परन्तु सब निष्फल हुए, अन्त को उस ने देश में से एक परम विद्वान पवित्र, धर्मिष्ठ बुद्धिमान् सुजन को उस का गुरु नियत किया कुछ दिन उस को धर्मोपदेश और शुभाचरण कि शिक्षा करते हुए थे, जिस का लवलेश मात्र भी उसके हृदय पर असर नहीं होता था, इतना अन्त समय पहुंच गया। मृत्यु आई समझ कर गुरु ने राज कुमार को पास बुलाया, राजकुमार ने गुरु से कहा मुझे आप ने क्यों बुलाया है, गुरु ने कहा ठेरो बताता हूं। तनिक मेरी पीठ पकड़ कर मुझे बैठा दो, शिष्य ने बैठा दिया, गुरु ने ईश्वर से अन्तिम प्रार्थना की और फिर लड़के

से कहा देखप्यारे जो संसार में सत् चित्त से ईश्वर का भय कर काम करते हैं वह इस प्रकार देह छोड़ते हैं। यह कहकर परमात्मा का नामोच्चारण करते हुए उस ने मुहं ढक लिया फिर एक क्षण उपरान्त राजकुमार ने देखा तो कि गुरू का शरीर ठंढा निर्जीव पाया यह देख कर लड़के के हृदय पर इतना अधिक असर हुआ कि उस दिन से वह ऐसा सुधर गया, कि मानो उस से वह दुराचरण थे ही नहीं। संसार में यदि सुख है तो केवल धर्म सहायता में है।

२- दूसरा बड़ा सुख मनुष्य को परोपकार वृत्ति में रहता है उसका पूरा अनुभव उदारचित्त सत्पुरुषों को ही होता है जिस का यह सिद्धान्त है॥

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा यह पराया संकीर्ण हृदय लघु जन करते हैं। उदार चरित पुरुष सर्वत्र वसुधा के मनुष्य मात्र को अपने कुटुम्ब के समान मानते हैं। इस का अनुभव तो बालक तक को होता है कि यह वह किसी पीड़ित दुःखी पर दया करके उस के दुःख को कुछ दे कर वा सहायता करके वा कोमल मृदुवचन कह कर दूर करता है तो दया करने वाले का हृदय आनन्द से कैसा गद्गद हो जाता है। उनके परमानन्द का तो कुछ अन्त ही नहीं है जिन का यह दिव्य वृत्त सदा बना रहता है और जो तन मन धन से परोपकार में ही लगे रहते हैं, यदि इस वृत्ति से आत्मा को पूर्ण आनन्द का अनुभव न होता तो क्या राजा हरिश्चन्द्र अपने देह को बेंच डालते, और दास बन कर सातदिन भूखे रहते, दधीचि अपने शरीर को दूसरों के अर्थ अर्पण कर देते कि मेरे हाड़ से वज्र बनाओ, यदि इस में सच्चा सुख आत्मा को न होता तो कोई शूर अपनी जान को हथेली पर रख कर अपने देश अपने वंश वालों की

रक्षा के अर्थ रण में पग बढ़ाता। यदि इस में सच्चा सुख न होता तो क्या विद्वान जन रात्रि दिन,श्रम परिश्रम करके मनुष्य जाति के सुख के लिये नाना प्रकार के यंत्र निकालते विद्या खोजते ग्रंथ लिखते ? यह न होता तो क्या कोई राजा वा देश प्रबन्धकर्त्ता प्रजा के सुख चैन के निमित्त दिन राति परिश्रम कर अपना तन मन उन्हीं के अर्थ अर्पण कर देता। इस परमानन्द के सामने संसार के सब सुख तुच्छ हैं, महाभारत का यह दिव्य उपदेश है।

येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः।
संतोषं जनयेद्धीमांस्तदेवेश्वरपूजनम्॥

जो जन किसी उपाय करके किसी देह धारी के आत्मा को संतोष पहुंचाता है। वही पूर्ण रीति से ईश्वर का पूजन करता है

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयं।
परोपकारपुण्याय पापाय परपीडनम्॥

अठारहो पुराणों में श्री व्यास जी के दो ही मनुष्य के लिये मुख्य उपदेश है—अर्थात् परोपकार से बढ़ कर कोई दूसरा पुण्य और पर पीड़ा से बढ़ कर कोई दूसरा पाप नहीं कहा। धन्य हैं, परमधन्य हैं वह सत् पुरुष जिन्हों ने परोपकार को ही अपने मन की वृत्ति बनाया है ह! ह! ह! "बिरथा तन नहिं पर उपकारा" यह वृत्ति तभी स्वभाव सिद्ध होती है जब मनुष्य अपने सुख दुःख आदि के सुख दुःख आदि का विचार अपने ही समान जाने, योगीश्वर श्री कृष्ण जी का वचन है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

जो मनुष्य अपने आत्मा के सुख दुख के समान सब प्राणियों के सुख दुःख को समझता है सो योगियों में परम उत्तम है यह सदैव से कहा जाता है " परोपकारी सदा सुखी" ऐसा सुजन सर्व जनप्रिय होता है।

तीसरा धर्म सुख संतोष वृत्ति में है। बहुधा जन अज्ञान से संतोष का उलटा अभिप्राय समझते हैं। वह आलस्य निरुत्साहता और साहसहीनता को ही संतोष कहते हैं। यह उन की बड़ी भूल है, ज्ञानीजन संतोष इस को कहते हैं कि कोई जन एक शुभकार्य्य सामर्थ्य भर करे, फिर उस से जो फल प्राप्त हो उस पर प्रसन्न हो पूरा प्रयत्न करने पर भी यदि कोई कार्य यथावत् संसिद्ध न हो तो ज्ञानी का धर्म नहीं है कि खेदित होकर बैठ रहे किन्तु फिर ईश्वर की कृपा पर पूरा भरोसा कर, और शुभकार्य्य को समाप्त किए विना न छोड़े अपने परिश्रम का फल न्यून वा अधिक ईश्वरेच्छानुकूल प्राप्त होनेपर जो हर्षित होता है वही संतोषी है और सदासुखी रहता है। इस के विरुद्ध जो जन मृग तृष्णा में पड़ कर धन सामर्थ्य ऐश्वर्य्य इन्द्रियादिक के भोगप्राप्ति की चिन्ता में दिनरात पड़े रहते हैं, और जितना अधिक प्राप्त करते हैं उतनी अधिक तृष्णा बढ़ाते हैं, उन को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता जिन की यह असंतोष वृत्ति है उन का जीवन महा दुःखमय बना रहता है केवल संतोषही महाधन है। असंतोषी में कुल लोभ अरसता ईर्षा पाषन्ड चित्त की संकीर्णता, लोलुपता, आदि; दोष, अनायास, बनेरहते हैं।

चौथा परम सुख मनुष्य को विद्याध्ययन करने में है, मनुष्य आत्मा का स्वभाव है कि वह सदैव नए २ वस्तुओं के जानने का परमाभिलाखी रहता है। और जब वह उन को जानता है परम प्रसन्न होता है„ उन्नति करते रहनाही उस का स्वभाव है, वह जो उन्नति करने में प्रयत्न नहीं करता अपने आत्मा के स्वभाव के विरुद्ध करता है, परन्तु विद्या का आनन्द उन्हीं सुजनों को प्राप्त होता है जो उन कठिनाइयों को सहन कर लेते हैं जो आरम्भ में हुआ करती हैं। बालकों को प्रथम ही जबतक विद्या के सुख का अनुभव नहीं होता पाठशाला में जाना और चार पांच घंटे

बंदी हो कर बैठना कैसा विष के समान जान पड़ता है और जब नियत पाठ समझना और सोचना पड़ता है तो और भी कड़ुआ जान पड़ता है। यदि गुरु की ताड़ना का भय न हो तो कोई भी बालक मन से न पढ़े परन्तु जब उस परम सुख का किञ्चित् उस को अनुभव होने लगता है तब विद्या में उस की प्रीति और बढ़ने लगती है, यहां तक कि उस परम सच्चे सुख के सामने संसार के और सब सुख तुच्छ जान पड़ते हैं, जो इस पूरे रंग में रंग जाता है। उस के सुख की सीमा नहीं रहती, इसी हेतु कर के सच्छास्त्रों में सुख का निरूपण इसरीति पर किया है॥

(१) यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धि प्रसादजम्॥

(२) विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(३) यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्य प्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥

अर्थ

(१) जो पहिले विषवत् देख पड़ता है और परिणाम उसका अमृत तुल्य होता है सो सुखमन और बुद्धि के स्वच्छकारी होने से सात्विक अर्थात् सबसे श्रेष्ठ होता है।

(२) विषय और इन्द्रिय के संयोग से जो सुख उत्पन्न होता है और पहिले अमृत के तुल्य दिखाई दे के अन्त में विष की नाई दुःख दाई होता है सो राजस अर्थात् मिथ्या सुख कहलाता है।

(३) जो सुख पहिले और अनुभव के अनन्तर मनमोहक और निद्रा आलस्य, और अविवेकता से उत्पन्न होता है सो तामस अर्थात् महामलीन निकृष्ट सुख है।

प्रथम सात्विकी में वह सब सुख हैं जो कठिन परिश्रम दुःख

और तप करने के उपरान्त अन्त में मनुष्य को प्राप्त होते हैं। उन में विद्या सीखना मुख्य है।

द्वितीय राजसी में वह है जो अपरिमित इन्द्रियों के भोग से होता है वह लौकिक और पारलौकिक दोनो विषयों में मनुष्य को नष्ट करता है। प्रथम तो वह अज्ञान से आच्छादित हो कर समझता है कि जो कुछ मनुष्य के जीवन का लाभ है इन्हीं मिथ्या सुखों में है, परन्तु जब वह अन्त क्षण भंगुर और फीके सिद्ध होते हैं, और उस के शरीर और आत्मा को नष्ट कर डालते हैं, तो वह अन्त को पश्चाताप करता है कि हाय मैं ने जीवन व्यर्थ खोया, तामसी सुख वह है जो परम अज्ञानी मूर्ख सोने आलस्य जीव हिंसा अथवा मादक वस्तु जैसे भंग चरस गांजा अफीम मदरा आदि के खाने में मानते हैं, वह आगे और पीछे दोनों बुरे हैं इन्ही नष्ट व्यवहारों से मनुष्य अपना यथार्थ कर्तव्य धर्म भूल कर और विद्या हीन हो कर पशु तुल्य हो जाता है॥

हे मित्रों! जो विद्याध्ययन करते हैं वही बुद्धिमान् होने के कारण मनुष्य जाति में अग्रगण्य होते हैं, वही ज्ञानी होने से सदा सुखी रहते हैं, वह ग्रन्थ अवलोकन करने के कारण मानो संसार के सब देशों और युगों के महात्मा बुद्धिमान् और ज्ञानी सुजनों से सतसंग करते रहते हैं। क्यों कि जिन के सुन्दर लाभकारी लेख विद्यमान हैं वह सदा चिरंजीव हैं, अब विचारिये जब कहीं सुसंयोग से किसी एक सुजन का संग प्राप्त हो जाता है तो कैसा परमानन्द प्राप्त होता है, वह धन्य हैं, महाधन्य हैं, जिन को विद्या द्वारा सदा संसार के और सब युगों के महान् सत्पुरुषों के सतसंग का आनंद प्राप्त होता रहता है, विद्या ही केवल एक द्वार है जिस से ऐश्वरी सृष्टि के चमत्कार दिखाई पड़ते हैं यह परम सुख कहने में नहीं आ सका इस को वही सुजन जानते हैं जिन को नित्य इसका अनुभव होता रहता है।

सब से बड़ा सुख जो मनुष्य को हो सकता है ईश्वर भक्ति है। वह जो सत्‌चित्त से कृपालु प्रभु के चरणारविन्द में प्रीति करते हैं सदैव परमानन्द में मग्न रहते हैं। उन को शरीर की कोई व्यथा नहीं व्यापती, उन तत्त्वदर्शियों को अपने सच्चे सुख के सामने संसार तुच्छ जान पड़ता है। जिन को इस परमानन्द का अनुभव हो जाता है वह बहुधा संसार परित्याग करके बन गिरि कन्दराओं में चले जाते हैं। हम संसारी कीड़ों की सामर्थ्य से बाहर है कि उस अकथनीय सुख को जानें वा वर्णन कर सकें. परन्तु हम में कोई विरले ऐसे हैं जिन को उस परम सुख का किञ्चित् अनुभव होता रहता है। हृदय की वृत्ति सदा एक सी नहीं रहती आप स्मरण करें कि जब कोई विपत्ति के समय शुद्ध हृदय से आपने ईश्वर से सहायता चाहने के लिये प्रार्थना की होगी तो उस संकट के अवसर पर चित्त को कैसा प्रबोध और ढाढ़स हुआ होगा, मानो कोई परम स्नेही मित्र हमारी सहायता के लिये कटिबद्ध खड़ा है। और जो केवल ध्यान से परमात्मा का आराधन करते रहते हैं उनके परमानन्द की तो कोई सीमा ही नहीं रहती वह तो ईश्वर में ही लय हो जाते हैं।

हे प्रिय आर्यबांधवो आज मैं आप की कृपा से कृतकृत्य हूं कि आप महाशयों ने इतने समय तक समाज में विराजमान हो कर मेरे निवेदन को इस प्रकार ध्यान पूर्वक श्रवण किया, मित्रो यदि मेरा निवेदन आप के चित्त पर ठीक जचा हो और यदि इस को आप बुद्धि सम्मत और सच्छास्त्रानुकूल पावें तो मुख्य धर्म यही है कि इसी के अनुसार अपने हृदय की वृत्ति को शुद्ध रक्खें और अपना आचरण बनावें ॥ इति शुभम्।

काशीनाथ खत्री
सिरसा ज़िला इलाहाबाद

५—कविशिरोमणि शेक्सपियर के मनोहर २० नाटकों के आशय के अनुवाद। यह हृदय के भाव और योरप देश का चलन व्यवहार दर्शाने में अद्वितीय है। प्रथम भाग मूल्य १॥)॥ द्वितीय भाग मूल्य १।≤)

६—बालकों के बिवाह कर देने की खोटी रीति की धार्मिक सामाजिक और शारीरक हानें, एक व्याख्यान मूल्य ≤)

७—मन की शुद्धि सब सद्व्यवहार की मूल कारण है, एक व्याख्यान, मूल्य ≤)॥

८—भारतवर्ष की बिख्यात शूरबीर, पतिव्रता, धर्मशीला, देश प्रबन्धकर्त्ता उदार हृदय रानियों के परम मनोहर चरित्र,॥)॥

श्रीमान डारेक्टर साहब ने इस को बहुत पसन्द करके पश्चमोत्तर और अवधदेश के डिपटी इन्स्पेक्टर मदारस के नाम सरक्यूलर आरडर नम्बर ४० तारीख १३ अक्तूबर १८८६ जारी किया है कि इनाम में देने के लिये इसकी प्रतियां ली जाया करें। श्रीमन महाराज उदय पूर ने इस पर १५०) पारितोषिक प्रदान किया।

९—हिन्दी की उन्नति देश की वृद्धि के लिये परमावश्यक है, एक व्याख्यान, मू० ≤)॥

१०—मट्टी शरीर पर मलने से रोग दूर करने की विधि बिजली की विद्या के अनुसार, मू० ≤)॥

११—जल को नाना रीति से काम में लाने से रोग चंगा करने की विधि, मू ≤)॥

१२—तीन ऐतिहासिक रूपक सिन्ध देश की राजकुमारी गुन्नोर की रानी, महाराजलवजी का स्वप्न—इन में विषयीजनों की दुर्दशा दर्शाई गई है, मू० ≤)॥

१३—गर्भस्थित बालक में सुन्दर रूप बल बुद्धि उत्पन्न करने के नियम बिजली की विद्या के अनुसार, मू० ≡)

१४—विधवा विवाह होने के शास्त्रोक्त प्रमाण और उन के बन्द रहने के दुख और हानें और बालविधवा संतापनाटक ।≈)॥

१५—मनुष्य का सच्चा सुख किस में है और क्यों कर प्राप्त हो सक्ता है, मू० ≈)॥ एक व्याख्यान

१६—सभा में उत्तम रीति से वक्तृता करना सीखने और अभ्यास डालने के नियम, मू० ≈)

१७—यूनान देश के तत्वज्ञानी और बुद्धिमानों के वचन और अनुभव का संग्रह, मू० ≈)

१८—वर्णबोध अर्थात् स्वच्छ हिन्दी की प्रथम पुस्तक जिस में स्वधर्म और नीत्यादि की शिक्षा की गई है, यह पुस्तकें प्रायः सब आर्य्य पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है मू॰)॥

१९—हिन्दीभाषा की द्वितीय पुस्तक स्वधर्म नीति सर्व प्रिय गुण उत्तम अभ्यास डालने की शिक्षा युक्त है, यह पुस्तकें प्रायः सब आर्य्य पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है मू० ≈)॥

२०—अंधाधुन्ध गौवों का वध देश के लिये धर्म नित्यव्यवहार नीतिराज प्रबन्धादि के विचार से परम हानिकारक है और उचित है कि क़ानून द्वारा बन्द किया जाय, दोनों अङ्गरेज़ी और हिन्दी में, यह गोरक्षिणी सभा हरद्वार के प्रधान की सहायता और प्रेरणात्‌द्वारा प्रकाशित हुवा है मूल्य.॰)

२१—ग्राम पाठशाला और निकृष्ट नोकरी नाटक—प्रथम में दिहाती मदर्सों का पूर्ण चित्र और दूसरे में अंगरेज़ी पढ़े नोकरी ढूंढ़ने वाले की कुगति और दुख दरसाये गये हैं ≈)॥

२२—देश की दरिद्रता और अङ्गरेज़ी राजनीति पर एतद्देशियों के विचार श्रीयुत दादाभाई नोरोजी के व्याख्यान का अनुवाद ≈)॥ २३—आर्य्यसमाज परिचय, मुं० मसर्यदान की लिखित, आर्य्यसमाज, के उद्देश्य, उसके कर्तव्य उसमें कौन २ शामिल है. उस ने क्या किया और आगे क्या करने की आशा है, उसके माननीय ग्रन्थ आदि की व्याख्या ।)॥

नम्बर १, २, ६, १२, १३ १६ उर्दू में भी हैं मूल्य वही।

काशीनाथ खत्री, सिरसा जिला इलाहाबाद